*विश्व अर्थव्यवस्था में भारत**

रघुराम जी. राजन

प्रथम रामनाथ गोयनका व्याख्यान में मुझे भाषण देने के लिए आमंत्रित करने हेतु धन्यवाद। जैसाकि आप जानते हैं कि श्री गोयनका एक स्वंतत्रता सेनानी थे, जिन्होंने इंडियन एक्सप्रेस को राष्ट्रीय समाचार पत्र में बदल दिया। यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि उनके समय में यह समाचारपत्र सर्वोत्तम खोजी समाचारपत्र हुआ करता था। उन्होंने आपातकाल स्थिति की अतिशयता को रेखांकित करने में सक्रिय भूमिका अदा की थी जो संभवतः आपातकाल हटा लेने के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी की पराजय का एक कारण बना। वे अथक रूप से भ्रष्टाचार एवं सरकारी निरंकुशता के विरोधी थे और उन्होंने ऐसे कई मंत्रियों एवं दिग्गज उद्योगपतियों को टिकने नहीं दिया। उनकी स्मृति में व्याख्यान देते हुए यह उपयुक्त होगा कि इस विषय पर बात की जाए कि आज भारत में हमने पारदर्शिता बढ़ाने तथा भ्रष्टाचार को कम करने के लिए कितने प्रयास किए हैं। हालांकि इस विषय पर आवश्यकतानुसार अन्यत्र बात कर चुका हूँ। इसलिए आज मैं इस विषय पर बात करूंगा कि विश्व अर्थव्यवस्था में भारत की सहभागिता कितनी है और उसे आज के अशांत माहौल में किस प्रकार बेहतर ढंग से बनाए रखा जाए।

विश्व अर्थव्यवस्था के लिए महामंदी से पूर्व की विकास दर को बनाए रख पाना मुश्किल हो रहा है- आईएमएफ की प्रत्येक रिपोर्ट में हर एक पिछली विकास - दर के अनुमान को कम ग्रेड का दिखाया गया है। विकास में बहाली इतनी धीमी क्यों रही है? इस प्रश्न का तात्कालिक उत्तर यह है कि महामंदी के पहले जो वित्तीय तेजी थी उससे औद्योगिक राष्ट्र कर्ज में डूब गए, और कर्ज चाहे सरकार पर हो, गृहस्थ पर हो या बैंक पर हो, वह विकास को रोक देता है। जहां इसका उपचार यह है कि कर्ज को माफ कर दिया जाए ताकि मांग की स्थिति को बहाल किया जा सके वहीं यह मुद्दा बहस का है कि क्या अतिरिक्त कर्ज देकर पैदा की गई मांग को क़ायम रखा जा सकेगा। किसी भी कीमत पर बड़े पैमाने पर कर्ज की माफी भले ही आर्थिक दृष्टि से जरूरी लगती हो किंतु राजनैतिक दृष्टि से बहुत कठिन होती है।

लेकिन, शायद कर्ज में डूबना कुछ अन्य गहरे कारणों की ओर इशारा करता है; महामंदी के पहले कर्ज देकर पैदा की गई मांग, जो अब कर्ज में डूब जाने का कारण बन गया है, ने विश्व की विकास क्षमता को कम कर दिया है, क्योंकि संभवतः यह समझ पाना कठिन हो रहा है कि संपूर्ण औद्योगिक जगत में बूढ़ी होती हुई आबादी के परिणाम क्या होंगे और यही कारण है कि उत्पादकता वृद्धि कम हो गई है।

संरचनागत सुधार एक ऐसा सुधार है जिसमें प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, नवोन्मेष में तीव्रता पैदा होती है और संस्थागत परिवर्तन आते हैं, यही वे रास्ते हैं जिनके माध्यम से तीव्र वृद्धि को आगे बढ़ाया जाता है। लेकिन ये चीजें संरक्षित क्षेत्रों को तकलीफ पहुंचाती हैं क्योंकि उन्होंने चीजों को यथास्थिति में रखकर उनसे किराया वसूलने की आदत पड़ चुकी हाती है। इतना ही नहीं, हो सकता है इन क्षेत्रों को उससे लाभ प्राप्त हो, किंतु वह अनिश्चित होता है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि तात्कालिक लुक्जमबर्ग प्रधानमंत्री जीन क्लाइड जंकर ने यूरो संकट चरम पर पहुंचने पर कहा था कि 'हम सभी जानते हैं कि क्या करना है, लेकिन हम यह नहीं जानते कि चुनाव जीत जाने के बाद दुबारा चुनकर कैसे आना है।'

इसके बावजूद औद्योगिक राष्ट्र पहले से कहीं ज़्यादा आक्रामक मौद्रिक नीति अपना रहे हैं। इससे हमारे जैसे उभरते बाज़ारों के लिए ज़बरदस्त जोखिम पैदा हो गया है, क्योंकि जब हमारे निवेशक 'जोखिम उठाने' की मुद्रा में होते हैं तब उस दिन पूंजी के आने का प्रवाह बहुत बढ़ जाता है और अन्य दिन जब निवेशक जोखिम न उठाने की मुद्रा में होते हैं तब पूंजी का बाहर चले जाने का भी जोखिम रहता है। वहीं पर प्रतिस्पर्धा देश में क्षमता की अतिशयता से भी हमारे कुछ प्रमुख उद्योगों के लिए चुनौती बनी रहती है।

भारत को क्या करना चाहिए ?

भारत को ऐसे वातावरण में क्या करना चाहिए जब अंतरराष्ट्रीय निवेशकों का व्यवहार अत्यधिक ग्रस्त हो और सभी देश अतिरिक्त संवृद्धि के लिए प्रयास कर रहे हों? महत्वपूर्ण यह है कि जब विश्व में विकास की स्थिति अनिश्चित हो, तब हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हमारा घरेलू वातावरण एक सुदृढ़, क़ायम रखने योग्य एवं स्थिर विकास को प्रोत्साहित करे। इसके लिए एक मैक्रो-आर्थिक स्थिरता के पुख्ता प्लेटफार्म की आवश्यकता है। इसे मैं और स्पष्ट रूप में बताता हूँ।

हाल के केंद्रीय बजट में राजकोषीय समझदारी पर बल दिया है और पहले किए गए वायदों को निभाया है, संसाधनों को पूंजीगत व्यय की ओर लगाया है तथा संरचनागत सुधार पर, खासतौर से कृषि पर फोकस किया है। बाद के समय में सरकारी बांड पर अर्जन में हुई गिरावट से पता चलता है कि बाज़ार में निवेशकों के सरकार की ओर से जो संदेश मिला है वे उसकी वजह से शांत बैठ गए हैं। राजकोषीय समेकन, तथा वस्तुओं की कम कीमतों ने भी चालू खाता घाटे को कम किया है।

---

* डॉ रघुराम जी राजन, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 12 मार्च 2016 को दिया गया प्रथम रामनाथ गोयनका स्मृति व्याख्यान। मैं डॉ. प्राची मिश्रा और उनकी टीम द्वारा दिए गए सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

मुद्रास्फीति भी स्पष्ट रूप से कम हो गई है जबकि अभी कुछ ज्यादा दिन नहीं हुए हैं कि सीपीआई मुद्रास्फीति दो अंकों में हुआ करती थी। भारतीय रिज़र्व बैंक की मुद्रास्फीति-केंद्रित मौद्रिक संरचना को मौद्रिक नीति समिति का गठन करके सुदृढ़ता प्रदान की जाएगी जैसाकि वित्त बिल में कहा गया था। जहां भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर एकतरफा मौद्रिक नीति का निर्धारण नहीं कर पाएंगे, वहीं मुझे विश्वास है कि इसका निर्णय एक समिति को देना अर्थव्यवस्था के हित में रहेगा। जहां समिति बहुत से विचारों को समेट सकेगी जो एक व्यक्ति नहीं कर सकता, वहीं इसमें अधिक निरंतरता होगी और उसपर अनावश्यक दबाव भी कम रहेगा। मेरा विश्वास है कि इस सरकार का मौद्रिक सुधार उसकी एक सांकेतिक उपलब्धि होगी।

स्थिरता कार्यसूची का अंतिम चरण बैंकिंग क्षेत्र की दबावग्रस्त आस्तियों को समाप्त करना है ताकि बैंकों के पास दुबारा ऋण देने की गुंजाइश रहे। पहले के समय में बैंकों की समस्या यह थी कि उनके पास पर्याप्त शक्तियां नहीं थीं कि वे प्रवर्तकों को ऋण चुकाने के लिए विवश कर सकते, या फिर दबावग्रस्त आस्तियां को बहाल कर सकते। अधिक विकसित देशों की तुलना में हमारे पास बैंकरप्सी प्रणाली क्रियाशील नहीं है, हालांकि इस संबंध में एक विधेयक इस समय संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। इसलिए, हमारे लिए सबसे पहले यह ज़रूरी है कि अदालत के बाहर प्रभावी समाधान प्रणाली तैयार की जाए। इतना करने के बाद, अब हमने बैंकों से कहा है कि वे दबावग्रस्त आस्तियों की पहचान करके उनका समाधान करें, भले ही उन्हें प्राप्त करने के लिए यथावश्यक पूंजी क्यों न जुटानी पड़े। हमारा आशय यह है कि मार्च 2017 तक बैंकों के तुलनपत्र पूरी तरह साफ-सुथरे हो जाएं और उनमें भलीभांति प्रावधान किया गया हो।

इस स्थिरीकरण कार्यसूची का सबसे मुश्किल पहलू शायद अर्थशास्त्र के समालोचकों को समष्टि-आर्थिक स्थिरता की आवश्यकता के बारे में समझाना है वह भी ऐसी स्थिति में जब विकास की दर उम्मीदों से कम हो। आर्थिक दबाव के ढेर पर बैठी अर्थव्यवस्था के लिए लगातार उससे बाहर निकालने का आर्थिक भोंपू (सायरन) बजाते रहने का मतलब यह है कि 'हे ईश्वर हमें स्थिरता प्रदान कर दे, किंतु जो अभी तक नहीं मिल पाई है।' विकास हमेशा सबसे महत्वपूर्ण रहा है, भले ही चाहे जितना जोखिम क्यों न पैदा हो जाए। सामान्यतया, सायरन बजाने का आपके लिए आशय होता है कि मतवादी न बनें (क्योंकि अंततः अकादमिक अर्थशास्त्री ही राजकोषीय घाटे का ध्यान रखेंगे), व्यावहारिक बनिये (इससे क्या फर्क पड़ता है कि एनपीए की जानकारी एक तिमाही या तीन तिमाही बाद में हो पाई) और भारतीय वास्तविकताओं को समझिये (हर कोई कह सकता है कि उन्हें महंगाई से नफरत है लेकिन अपस्फीति की प्रक्रिया में जो कष्ट है उसे कोई सहन करने के लिए तैयार नहीं है)।

मेरा मानना है कि हम सब सायरन को गलत साबित करने में लगे हैं। जहां विश्व की अर्थव्यवस्था दुःखद स्थिति से गुज़र रही है और भारत लगातार दो सूखे की चपेट में पड़ चुका है, वहीं इनमें से कोई भी चीजें अर्थव्यवस्था को विगत में बहुत पीछे छोड़ चुकी होतीं, लेकिन मैक्रो-आर्थिक स्थिरता पर हमारा फोकस बना रहना हमारी सफाई देने का हिस्सा होना चाहिए कि हमने 7 प्रतिशत से अधिक की संवृद्धि प्राप्त की है, हमारे अन्य उभरते बाज़ारों की तुलना में मुद्रास्फीति कम रही थी और चालू खाता घाटा भी कम रहा था। अब हमें इस सुदृढ़ आधार पर ही इमारत तैयार करनी है। इसमें जो सबसे खास बात होगी वह यह कि हम विश्व की अर्थव्यवस्था से किस प्रकार जुड़ते हैं। मैं विशेष रूप से व्यापार, विनिमय दर, पूंजी प्रवाह और नये विचार के बारे में विशेष रूप से बात करूंगा।

अंतरराष्ट्रीय व्यापार

पूरे दशक में पहली बार ऐसा हुआ है कि विश्व के उत्पादन की तुलना में विश्व का व्यापार काफी धीमी गति से बढ़ा है। इस संबंध में कई संभावित व्याख्याएं दी जा सकती हैं, जैसे-जैसे देश अमीर होता जाता है, व्यापार से इतर सेवाओं का जीडीपी में हिस्सा ज़्यादा होने लगता है, जिससे जीडीपी में वृद्धि व्यापार की तुलना में अधिक तेजी से होती है। पूंजीगत वस्तुओं के गहन व्यापार से निवेश शांत पड़ने लगता है क्योंकि विश्व में क्षमता की अतिशयता होती है इसलिए जीडीपी की तुलना में व्यापार कहीं धीमी गति से बढ़ता है। अंतिम बात यह है कि चूंकि औद्योगिक राष्ट्र अधिक प्रतिस्पर्धी हो गए हैं और चीन ने इस स्पर्धा में बढ़त बना ली है, ज़्यादा से ज़्यादा इनपुट जो अंतिम उत्पाद के लिए लगते हैं, उन्हें देश के बाहर से लेने के बजाय देश के भीतर से लिया जाने लगता है। इसीलिए विश्व की कुछ सप्लाई की श्रृंखला टूट रही है। इन कारणों से आनेवाले दिनों में जहां भारत का वस्तुओं और सेवाओं में व्यापार दो अंकों की दर से बढ़ रहा है वह शायद कुछ दिनों की याद बनकर रह जाएगा।

यह बेहतर होगा कि व्यापार डाटा का परीक्षण किया जाए कि भारत की तुलना शेष विश्व से कैसी है। चित्र. में भारत में वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात की वृद्धि प्रस्तुत की गई है जो मोटे तौर पर उभरते बाज़ारों का आईना है।

हाल के दिनों में, उभरते बाज़ार के वस्तु निर्यातक कम कीमत की वजह से निश्चित रूप से प्रभावित हुए हैं। जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि उभरते बाज़ारों से माल के निर्यात की तुलना में हाल के समय में भारतीय माल के निर्यात की स्थिति खराब है (चित्र 2)।

वहीं पर भारत से सेवाओं के निर्यात की स्थिति कुछ हद तक बेहतर है, संभवतः इसलिए कि अमरीका जैसे देश जिन्हें हम सेवाओं का निर्यात कर रहे हैं, उनकी अर्थव्यवस्था अधिक सुदृढ़ता से बहाल हो

चित्र 1 : वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात (भुगतान संतुलन, वर्तमान में अमरीकी डालर)
(तिमाही, वर्ष-दर-वर्ष, प्रतिशत परिवर्तन)

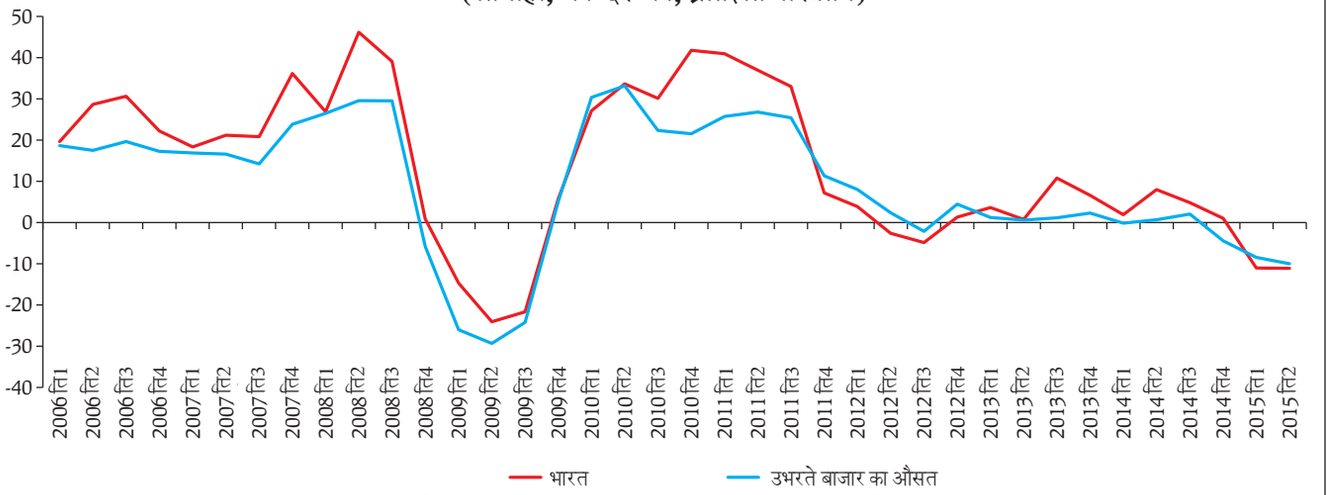

स्रोत : आईएमएफ भुगतान संतुलन सांख्यिकी। उभरते बाजार हैं - ब्राजील, चीन, इंडोनेशिया, मेक्सिको, रूस, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैंड, टर्की और भारत। काली रेखा इन उभरते बाजारों में संवृद्धि की सामान्य औसत स्थिति प्रदर्शित करती है।

रही है। लेकिन, ये अंतर बहुत कम समय के लिए हैं, इसलिए इससे कोई ठोस नतीजा निकालना समझदारी नहीं होगी। इससे शायद एक सबक यह ज़रूर मिलता है कि व्यापार में कमी की मार केवल भारत ही नहीं झेल रहा है।

लेकिन, जैसे-जैसे भारतीय व्यापार धीमा पड़ रहा है, उद्योग के लोग प्राधिकारियों से आग्रह कर रहे हैं कि वे कुछ करें। जाहिर है कि यदि सारे देशों में व्यापार कम हो गया है तो इसका उपाय भारतीय प्राधिकारियों के बस के बाहर है। जहां हम कुछ उद्योगों में संभावित डम्पिंग की स्थिति का परीक्षण कर सकते हैं, वहीं हमें सावधान रहना होगा कि संरक्षित उद्योग में मूल्यों में किसी भी प्रकार की वृद्धि देश के अन्य उद्योगों को कहीं गैर-स्पर्धी न बना दे।

ऐसे समय जब व्यापार धीमा हो रहा है तभी हमारे पंडित विनिमय दर की ओर देखते हैं और तर्क देते हैं कि इसका अतिमूल्यन किया गया है। मैंने अभी-अभी यह बात कही है कि हम ही केवल

चित्र 2 : वस्तुओं का निर्यात (भुगतान संतुलन, मौजूदा अमरीकी डालर)
(तिमाही, वर्ष-दर-वर्ष, प्रतिशत परिवर्तन)

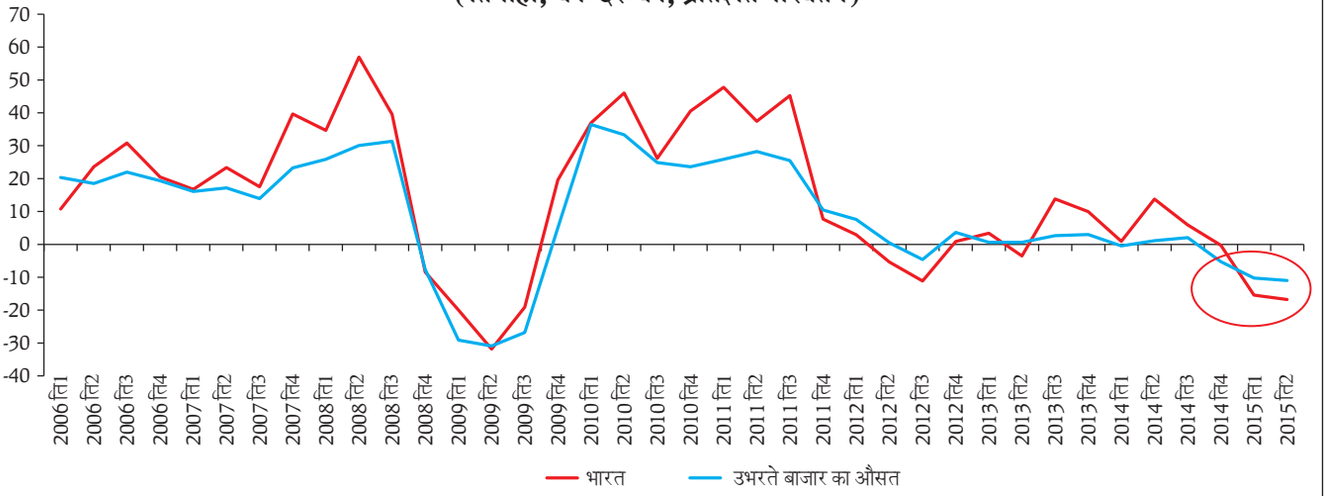

स्रोत : आईएमएफ भुगतान संतुलन सांख्यिकी। उभरते बाजार हैं - ब्राजील, चीन, इंडोनेशिया, मेक्सिको, रूस, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैंड, टर्की और भारत। काली रेखा इन उभरते बाजारों में संवृद्धि की सामान्य औसत स्थिति प्रदर्शित करती है।

चित्र 3 : सेवाओं का निर्यात (भुगतान संतुलन, मौजूदा अमरीकी डालर)
(तिमाही, वर्ष-दर-वर्ष, प्रतिशत परिवर्तन)

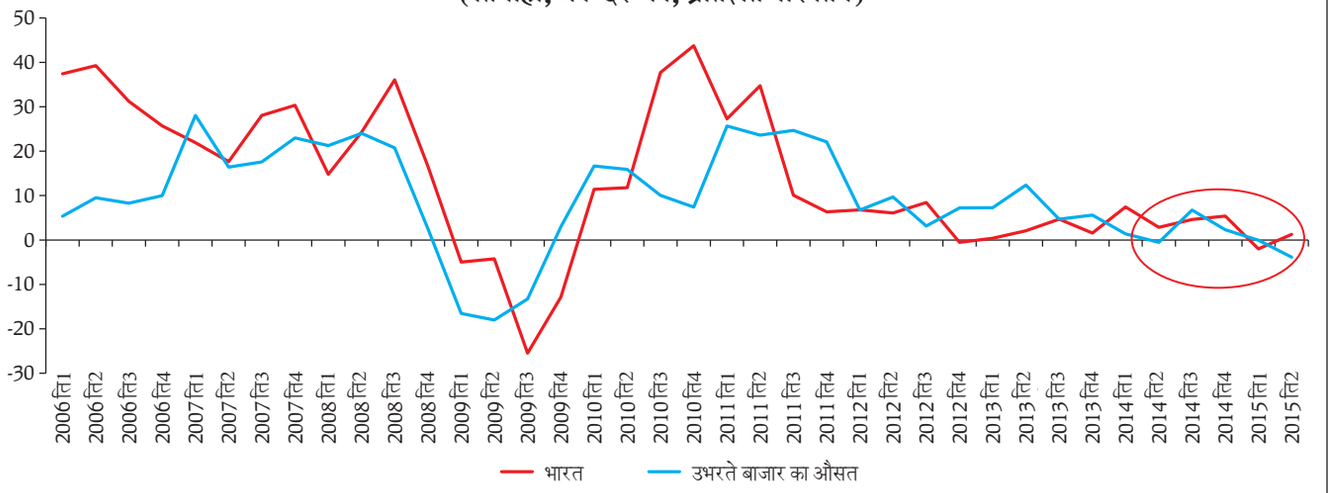

स्रोत : आईएमएफ भुगतान संतुलन सांख्यिकी। उभरते बाज़ार हैं - ब्राजील, चीन, इंडोनेशिया, मेक्सिको, रूस, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैंड, टर्की और भारत। काली रेखा इन उभरते बाज़ारों में संवृद्धि की सामान्य औसत स्थिति प्रदर्शित करती है।

अकेले नहीं हैं जिसका व्यापार कम हो रहा है, लेकिन तब भी विनिमय दर का परीक्षण हमें कर लेना चाहिए।

विनिमय दर

अधिकांश लोग विनिमय-दर के बारे में जब सोचते हैं तो वे डालर के मुकाबले रुपए का मूल्य देखते हैं। जैसाकि चित्र 4 में दिखाया गया है, रुपया, डालर की तुलना में 2015 के प्रारंभ से ही लगभग 6 प्रतिशत कमज़ोर हो गया था, जो तकरीबन वही समय था जब हमारी वस्तुओं का निर्यात अपेक्षा से कम होने लगा था। इस मूल्यह्रास से हमारे निर्यात को मदद मिलती, हालांकि मूल्यह्रास का असर थोड़े समय बाद दिखलाई देता है।

लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि अन्य करेंसियों का भी डालर के मुकाबले में मूल्यह्रास हुआ है। इसलिए जहां अमरीकी उत्पादनकर्ताओं की तुलना में हमें फायदा हुआ है, वहीं अन्य विदेशी उत्पादनकर्ता और अधिक प्रतिस्पर्धी हुए होंगे क्योंकि उनकी विनिमय

चित्र 4 : अमरीकी डालर की तुलना में प्रमुख करेंसियों में (%) वृद्धि (+) / ह्रास (-)

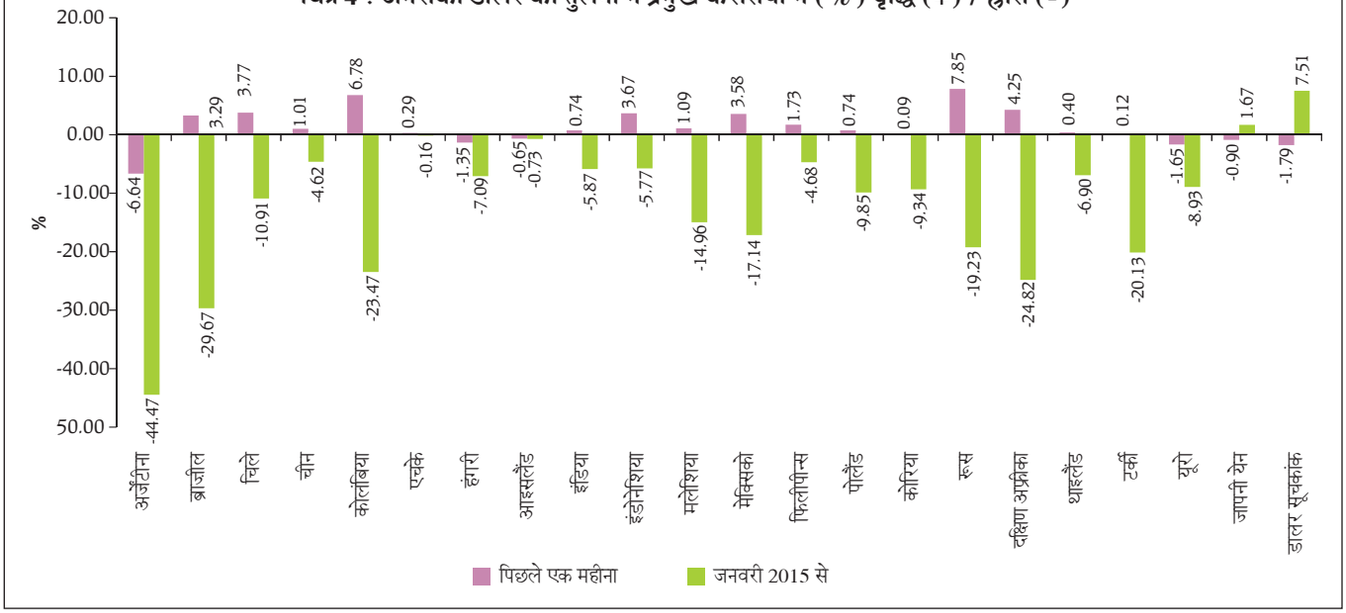

दर और अधिक हासिल हुई है। इसीलिए अर्थशास्त्री सांकेतिक प्रभावी दर के सूचकांक को देखने की सलाह देते हैं, जो रुपए के मूल्य को अन्य विनिमय दरों की तुलना करके आंकता है, प्रत्येक को व्यापार में उसके हिस्से के अनुसार मापता है।

चित्र 5 में दिए गए मैट्रिक के अनुसार रुपए का मूल्य 2015 के प्रारंभ से ही अपेक्षतया सपाट रहा है। हमने डालर के मुकाबले जो खोया है, उसे यूरो के मुकाबले पाया है या फिर वास्तविक बने रहे हैं, इस प्रकार समग्र रूप से व्यापार-भार के अनुसार रुपए का मूल्य सपाट बना रहा है।

लेकिन, ज़रा रुकें, हमारे अर्थशास्त्री मित्र यह कहंगे कि अनेक राष्ट्रों की तुलना में भारत में मुद्रास्फीति अधिक है। यह प्रतिस्पर्धा की स्थिति को प्रभावित करती है। यदि अमरीका में एक वर्ष पहले विगेट की लागत एक डालर थी, और तब भारत में 63 रुपये थी, तो ऐसी स्थिति में भारतीय उत्पादनकर्ता के साथ स्पर्धात्मक स्थिति में थे क्योंकि डालर का मूल्य 63 रुपये था। लेकिन यदि भारत में मुद्रास्फीति 5 प्रतिशत हो और अमरीका में शून्य हो तो भारतीय विनिर्माता को आज उसे बनाने में 66.2 रुपये लगेंगे। यदि डालर की तुलना में रुपया 63रु. पर टिका रहता तो भारतीय विनिर्माता आज गैर-प्रतिस्पर्धी बन जाते - अमरीकी प्रोड्यूसर विगेट का निर्माण केवल 63 रुपये के बराबर की लागत पर कर लेता। अन्य शब्दों में, प्रतिस्पर्धा की स्थिति को बनाए रखने के लिए रुपये को मुद्रास्फीति के अंतर बनाम ट्रेडिंग पार्टनर के बराबर ह्रासित होना ही था। हम कितने स्पर्धी हैं इस बात के सूचकांक को 'वास्तविक प्रभावी विनिमय दर' कहते हैं। उस स्थिति के बारे में सोचिए जब सांकेतिक प्रभावी विनिमय दर को मुद्रास्फीति के साथ समायोजित किया जाता है। जितना ही यह अधिक होगा, उतना ही मुद्रास्फीति को आफसेट करने के लिए विनिमय दर में ह्रास होगा और हम उतने ही ज़्यादा गैर-प्रतिस्पर्धी होंगे।

चित्र 6 देखें, जिसमें वास्तविक प्रभावी विनिमय दर को अंकित किया गया है, बहुत प्राचीन समय के सत्य को उदघाटित करता है कि इसकी व्याख्या प्रेक्षक की आंखों में होती है। यदि कॉलम लिखने वाली हमारे निर्यात के धीमेपन के लिए विनिमय दर को दोषी ठहराना चाहती है तो वह सितंबर 2013 के न्यूनतम बिंदु से सूचकांक को देख सकती है और यह तर्क दे सकती है कि उसमें 20 प्रतिशत का ह्रास हुआ है (आईएमएफ माप पर आधारित)। निश्चित ही यह तर्क दे पाना कठिन होगा कि सितंबर 2013 में हमारी विनिमय दर जिस न्यूनतम बिंदु पर पहुंची थी, वह साम्य दर प्रदर्शित करती है। इतना ही नहीं, उस अवधि के दौरान उभरते बाज़ारों की तुलना में हमारा निर्यात काफी अच्छा था (देखें चित्र 1)[1]। वस्तुतः, पिछले वर्ष जब वस्तुओं का निर्यात धीमा पड़ गया था, तब वास्तविक प्रभावी दर अपेक्षाकृत सपाट थी। इसलिए यदि कोई विनिमय दर पर लगे आरोप को समाप्त करना चाहेगा तो वह हाल की अवधि की ओर संकेत करेगा।

चित्र 5 : संकेतिक प्रभावी विनिमय दरें (एनईईआर) : भारत

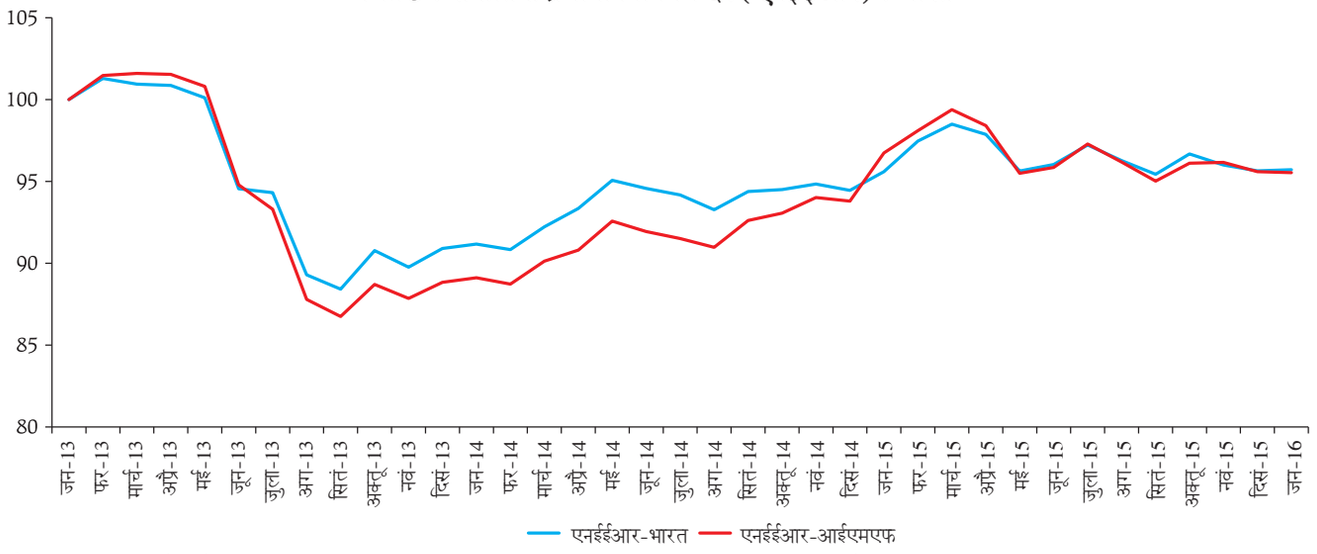

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक और आईएमएफ, जनवरी 2013 को सूचकांक सामान्य हो गए = 10, बढ़त की स्थिति वृद्धि दर्शाती है।

चित्र 6 : वास्तविक प्रभावी विनिमय दरें : भारत

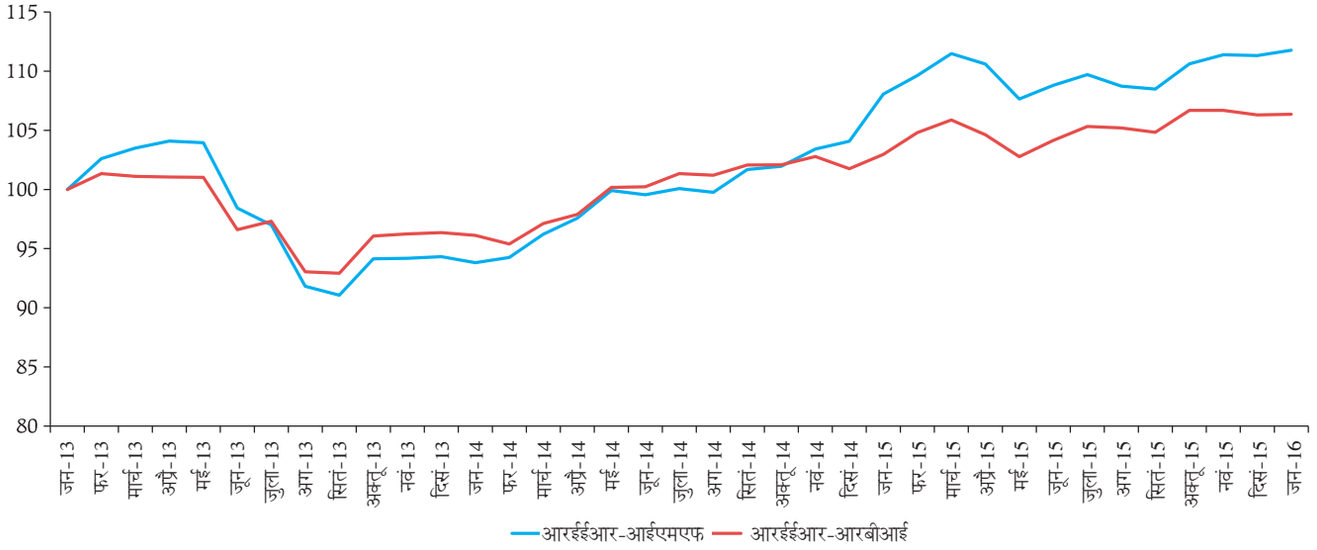

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक और आईएमएफ, जनवरी 2013 को सूचकांक सामान्य हो गए = 100, बढ़त की स्थिति वृद्धि दर्शाती है।

लेकिन विनिमय-दर पर अतिमूल्यन के आरोप को दूर करने का एक अन्य कारण भी है। वास्तविक विनिमय-दर प्रतिस्पर्धा को मापने का मात्र एक उपाय है। फर्में पहले से ही उत्पादकता के मोर्चे पर हैं, इसलिए वे नवोन्मेष के माध्यम से उत्पादकता बढ़ा सकती हैं।

गरीब देश में, उत्पादकता को वर्तमान बाधाओं को दूर करने मात्र से या पहले से ज्ञात सर्वोत्तम प्रथाओं को अपनाते हुए उत्पादकता के मोर्चे पर निकट जाकर बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत में उत्पादकता तभी बढ़ाई जा सकती है जब फैक्ट्री से लेकर रेलवे तक अच्छी सड़क बनी हो, या फिर फर्म ने अपनी इन्वेंट्री अच्छी तरह व्यवस्थित रखी हो। भारतीय मैनुफैक्चरिंग जीडीपी बहुत तेजी से बढ़ रहा है जब फर्मों की अंतिम बिक्री में थोड़ी सी बढ़त हो रही है, इसका एक कारण यह है कि फर्में उत्पादकता बढ़ाने पर फोकस कर रही हैं। इस प्रकार वास्तविक विनिमय-दर में किसी भी प्रकार की वृद्धि को समंति (आफसेट) करने का अर्थ है कि शेष विश्व की तुलना में उत्पादकता-अंतर का हमें मिलने वाला फायदा। मान लीजिए कि बहुत कंजूसी से इसे 2 प्रतिशत प्रति वर्ष लें, तो भी वास्तविक वृद्धि का ज़्यादा हिस्सा जिसके बारे में अर्थशास्त्री शिकायत करते रहते हैं, उत्पादकता में अंतर के साथ लगभग समंजित हो जाता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि भारतीय व्यापार धीमा हो रहा है, फिर भी यह धीमापन अन्य देशों में हो राहे धीमेपन के समान है, जिसकी अधिकांश वजह वस्तुओं के मूल्यों में गिरावट है, और थोड़ी सी वजह व्यापार की मात्रा में कमी होना है। जहां पिछले वर्ष वस्तुओं का निर्यात थोड़ा सा प्रभावित हुआ था, वहीं इसके स्पष्ट पैटर्न के बारे में बात पाना शीघ्रता होगी, और निश्चित रूप से विनिमय दर में कमी पर विश्वास करना मुश्किल होगा।[2]

इष्टतम (गोल्डीलाक्स) दर

इस चर्चा को और आगे बढ़ाना शायद बेहतर होगा। यदि भारतीय रिज़र्व बैंक बटन दबाकर अपनी इच्छानुसार (जैसाकि कुछ अर्थशास्त्री इसे करना संभव मानते हैं) विनिमय-दर प्राप्त कर सकता तो क्या उसे मज़बूत रुपया या कमज़ोर रुपया लेना चाहिए? गैर अर्थशास्त्री व्यक्ति मज़बूत रुपए लेने की वकालत करेंगे यह न केवल राष्ट्र की सुदृढ़ता को प्रकट करता है, बल्कि जब आप विदेश जांएगे तो अपने रुपऐ से ज़्यादा चीजें खरीद सकेंगे, तथा आयात सस्ता होगा। गैर-अर्थशास्त्री व्यक्ति का ध्यान उपभोक्ता पर होता है।

और ऐसा क्यों न हो, स्पष्ट है क्योंकि घरेलू पर्यटन और घरेलू उत्पादन विदेश के पर्यटन एवं विदेश के उत्पादन की तुलना में नुकसान में रहेंगे इसलिए अनेक अर्थशास्त्री कमज़ोर रुपए को अपनाना चाहेंगे। फिर भी यह आधुनिक समय, जो उत्पादक - फोकस्ड है, मर्केंटलिस्ट यह स्वीकार नहीं करते कि अवमूल्यन घरेलू उत्पादनकर्ताओं के लिए ऐसी सब्सिडी है जो घरेलू उपभोक्ता, विदेशी वस्तुओं के लिए अत्यधिक ऊंची कीमत चुकाते हैं, और ब्याज दर को कृत्रिम रुप से नीचे रखना पड़ता है ताकि हस्तक्षेप के माध्यम से जमा किए गए भारी विदेशी मुद्रा भंडार के धारित करने की लागत को कम किया जा

[2] वास्तव में, यदि हम मैनुफैक्चरिंग निर्यात पर फोकस करें जो कीमतों में तीव्र उतार-चढ़ाव के प्रति शायद कम संवेदनशील होता है, हाल के वर्षों के सीमित डाटा के आधार पर हम यह पाते हैं कि भारत में पिछले कुछ वर्षों में मंदी की मात्रा तुलना योग्य थी या अनेक उभरते बाज़ारों से कम थी।

सके। दीर्घकाल की भी लागत को कम किया जा सके। दीर्घकाल की भी लागत होती है। देश में कृत्रिम रूप से कम विनिमय दर पर किया गया भारी निवेश विनिमय दर के सामान्य हो जाने पर प्रतिस्पर्धी नहीं रह जाता है। कोई यह दलील दे सकता है कि इससे तो 1990 के दशक के जापान के अनुभव का पता चलता है और शायद आज चीन के कुछ उद्योगों द्वारा किए जा रहे अनुभव भी परिलक्षित होते हैं।

विनिमय दर के मूल्य को कम आंकना संभवतः बीते समय में उन देशों के लिए अर्थ रखता था जिनकी फर्मे कमज़ोर होती थीं और उनके घरेलू बाज़ार छोटे थे। भारत की स्थिति आज उन देशों से कहीं भिन्न है जो निर्यातजन्य पूर्वी एशियाई टाइगर कहलाते थे जब वे अपने विकास-पथ पर होते थे। हमारे एक आदर्श विनिमय-दर न तो मज़बूत और न ही कमज़ोर दर उपयुक्त है, बल्कि जो है वही उपयुक्त है। कुछ खास तरीके से बाज़ार की शक्तियां आपको इस इष्टतम दर (गोल्डीलाक रेट) पर पहुंचाती हैं।

हालांकि ऐसी परिस्थितियां भी हैं जिनमें तेजी से पूंजी का आना या चले जाना दर को एक ऐसे स्तर पर ले जा सकता है जिसको सिद्धांतों के समर्थन की आवश्यकता नहीं होती है। भारतीय रिज़र्व बैंक संभवतः यह स्पष्ट रुप से नहीं जानना चाहेगा कि किसी भी समय विनिमय दर का साम्य स्तर क्या है, बल्कि जब कभी भी हम यह समझते हैं कि दरों में उतार-चढ़ाव की अति हो गई है तब हम हलके से समायोजन के लिए हस्तक्षेप करते हैं, जो बाज़ार की भावनाओं से संचालित होता है और जिस स्थिति को उलट देने की संभावना होती है। हमारा आशय दरों को अत्यधिक बढ़ जाने से रोकना है और अनावश्यक अस्थिरता न आने देना है, बजाए इसके कि हम आवश्यक समायोजन के मार्ग में खड़े होकर बाधा बन जाएं।

निश्चित रूप से बाज़ार की अस्थायी असंगत स्थिति केंद्रीय बैंक को उकसा सकती है। काफी हद तक बैंक से धन निकालने की होड़ की स्थिति की तरह, करेंसी का गिरता हुआ मूल्य बाज़ार स्थिति की तरह, करेंसी का गिरता हुआ मूल्य बाज़ार में और गिरावट ला सकता है क्योंकि विदेशी निवेशक इससे पहले कि सब कुछ खो दें वे बाज़ार से निकल जाने का प्रयास करेंगे। अन्य करेंसियों की तुलना में रुपए के मूल्य में समुचित उतार-चढ़ाव बनाए रखने के लिए हमें तीन चीजों की जरुरत होती है। पहली, अच्छी नीतियां जो समष्टि-आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करें और निवेशकों को आश्वस्त कर सकें कि उनका धन मध्यावधि में सुरक्षित है। इसके बारे में मैं पहले बात कर चुका हूँ।

दूसरी, हमें ऐसी स्थिर पूंजी को आकर्षित करना चाहिए जो लंबे समय तक टिकी रहे। इसका अर्थ यह है कि अल्प अवधि के लिए बहुत ज़्यादा स्वयं को खोल देने से रोकना और अच्छे समय में विदेशी मुद्रा में कर्ज के प्रवाह को भी रोकना, भले ही वे चाहे जितना कम ब्याज प्रभारित करें। पिछले कुछ वर्षों में हमने अल्पकालिक रुपये ऋण लिखतों में विदेशी पोर्टफोलियो ऋण निवेश को सीमित कर दिया है। इसका मतलब यह नहीं है कि ये निवेशक दीर्घकालिक बांड नहीं बेच सकते और क्षण भर की सूचना देकर छोड़ देंगे, इसका अर्थ यह है कि दीर्घकालिक परिपक्वता बांडों के निवेशक उन निवेशकों की तुलना में ज़्यादा स्थायित्व वाले होते हैं जो केवल ओवरनाइट का एक्सपोजर चाहते हैं। वहीं पर हमने धीरे-धीरे सरकारी बांडों में विदेशी निवेशकों के लिए निवेश की सीमा बढ़ा दी है और उसका बढ़ाया जाना जारी रहेगा।

हमारे नये बाह्य कमर्शियल उधार के नियम इंफ्रास्ट्रक्चर परियोजनाओं को तथा अन्य ऐसी परियोजनाओं को प्रोत्साहित करते हैं जिनके पास सीमित मात्रा में विदेशी कमाई है, कि वे या तो रुपए मसाला ऋण जारी करें या फिर वस्तुतः दीर्घकाल के लिए उधार लें। इससे यह जोखिम सीमित हो जाता है कि उन्हें जब विनिमय दर उनके प्रतिकूल चली जाए तो उन्हें उसकी चुकौती करनी पड़ेगी।

अंतिम, सरकार 'मेक इन इंडिया' के लिए विदेशी निवेशकों को प्रोत्साहित करती रही है। इस मुहिम का एक परिणाम यह हुआ है कि विदेशी परोक्ष निवेश की मात्रा काफी बढ़ी है,जो बहुत स्थायी स्वरूप का निवेश है। वर्ष समाप्त होने में अभी दो महीने बाकी हैं, निवल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पहले ही अब तक के दूसरे सबसे उच्च स्तर पर पहुंच चुका है जो इतना पर्याप्त है कि चालू खाता घाटा से कहीं अधिक है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि विदेशी पूंजी प्रवाह के प्रति हमारी नीति धीरे-धीरे उदारीकरण की है जहां हम प्रयास करते हैं न कि सस्ते वित्त की ओर प्रलोभित होते हैं, लेकिन हम अपने विकास के लिए धन जुटाने हेतु ऐसी पूंजी प्राप्त करते हैं जिसके जोखिम को हम वहन कर सकें। हमारा मंतव्य यह होता है कि विदेशी निवेशकों को अच्छा प्रतिफल मिले और हमारा निरंतर आशय यह भी रहता है कि देश में प्रवेश करने एवं बाहर निकलना दोनों आसान हो।

आखिरी बात यह है कि हमारे बचाव की तीसरी सुविधा हमारा विदेशी मुद्रा भंडार है। हम बाजार में अस्थिरता को सहज बनाने के लिए हस्तक्षेप करते हैं और वर्ष के दौरान कभी हम डालर खरीदते हैं और कभी बेचते हैं।

निर्यात कैसे बढ़ाया जाए

इसलिए यदि मेक इन इंडिया में वृद्धि लाने हेतु विनिमय दर हमारी तलाश में सहायक उपकरण नहीं है तो फिर हम अधिक निर्यात कैसे कर सकेंगे? इसका उत्तर आसान है - इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण करते हुए उत्पादकता बढ़ाएं, बेहतर स्कूल के माध्यम से मानव पूंजी को बेहतर बनाएं, कारोबारी रेगुलेशन और कराधान को आसान बनाएं, और वित्त की उपलब्धता में सुधार लाएं। भाग्य से यही वे बातें हैं जिनपर सरकार ध्यान केंद्रित कर रही है।

चित्र 7 : भार को निवल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का प्रवाह *

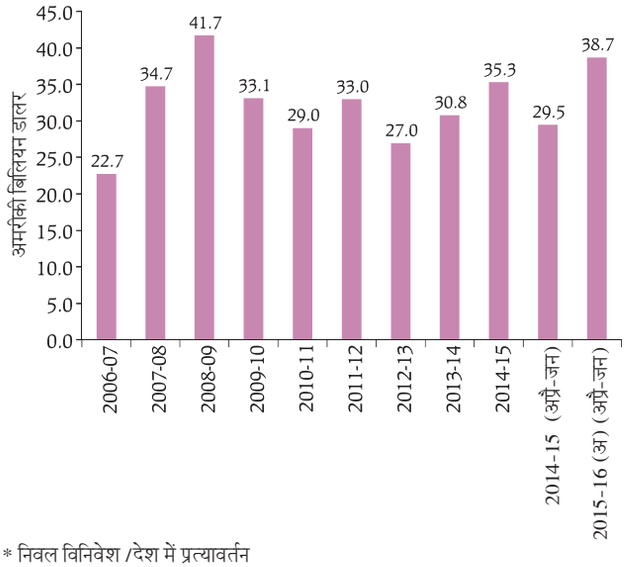

* निवल विनिवेश /देश में प्रत्यावर्तन

मुझसे प्रायः पूछा जाता है कि 'हम किन उद्योगों पर फोकस करें, किन चीजों को प्रोत्साहित करें?' बीते हुए दिनों से सीखते हुए, मेरा मतलब है कि ऐसी किसी चीज को प्रोत्साहित न किया जाए, हो सकता कि सब कुछ समाप्त कर देने का वही मार्ग हो। इसके बजाय, हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हम एक ऐसा अच्छा कारोबारी वातावरण तैयार करें जो किसी भी प्रकार की गतिविधियों के लिए सहायक हो, और हमारे असंख्य उद्यमियों को नए एवं रोचक कारोबार सृजित करने का अवसर दिया जाए। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने आईआईटी का निर्माण कराया ताकि अर्थव्यवस्था को संभालने वाली सरकारी उच्च संस्थाओं को इंजीनियर प्राप्त हो सकें लेकिन उसके बजाय बाडी शाप को प्रबंधक और प्रोग्रामर सप्लाई हुए जो वाय2 के बग को समाप्त करने पर ध्यान केंद्रित करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे यहां पूरे विश्व को मात देने वाले साफ्टवेयर पुरोधा पैदा हुए। जहां सरकार ने साफ्टवेयर उद्योगों का सृजन नहीं किया वहीं उसके उभरते एवं विकसित होने में उसी प्रकार, आइए कारोबारी गतिविधियों को सुविधायुक्त बनाए किंतु उसमें बहुत अधिक डिजाइन होने की कोशिश न करें या उसपर न थोपें।

विचार और विश्लेषण

अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं विश्व के लिए एक और बात पर जोर देना चाहूंगा, वह है विचार और विश्लेषण। आज हमें अधिकांश अंतरराष्ट्रीय मेजों पर सीट हासिल है, अनेक राष्ट्र हमारे साथ द्विपक्षीय, बहुपक्षीय संधि करना चाहते हैं। जब हम महत्वपूर्ण नहीं थे तब हमें ऐसे प्रस्तावों की ओर धकेल दिया जाता था जो हमारे लिए हानिकारक होते थे, यह जानते हुए भी कि इससे हमपर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। जैसे-जैसे हमें अधिक सक्तियां प्राप्त हो रही हैं, हमें जरुरत है कि इन क्षमताओं का उपयोग और भी प्रभावी तरीके से किया जाए।

आज भी, यह दुर्भाग्यपूर्ण सच्चाई है कि अंतरराष्ट्रीय बैठकों में पुरानी शक्तियों का ही वर्चस्व है। लेकिन उन्होंने उसे क्रूर राजनैतिक शक्तियों से नहीं बल्कि विचारों की शक्तियों, कार्यसूची निर्माण तथा उन संगठनों के माध्यम से प्राप्त किया है जो वर्चस्व बनाए हुए हैं। जी-20 की कार्यसूची अभी भी काफी हद तक पुराने जी-7 के तत्वों द्वारा बनाई जाती हैं और प्रायः हम यह पाते हैं कि वे आपस में पहले से ही सहमत दृष्टिकोण बना लेते हैं। यह तो शेष बचे हुए हम लोगों की तब उसके नतीजे को प्रभावित करने के बारे में थोड़ी उम्मीद बंध जाती है जब केवल बड़ी शक्तियां उनसे असहमत होती हैं।

यह कमी शक्ति-संरचना में नहीं है, यह कमी हमारे भीतर है। जब तक कि उभरता हुआ विश्व अपनी कार्यसूची नहीं प्रस्तुत करता है, उसे आगे बढ़ाने के लिए बौद्धिक एवं विश्लेषणात्मक आधार नहीं बनाता है और उसे समर्थन प्रदान करने के लिए साझा संबंध नहीं बनाते हैं, तब तक हमारे आगे बढ़ पाने का कोई मौक़ा नहीं है। ब्रिक्स इस मामले में प्रोत्साहनपरक तरीके से नीतिगत मसलों पर चर्चा करने एवं संयुक्त दृष्टिकोण विकसित करने की कोशिश करता है, लेकिन हमें इस दिशा में और अधिक कोशिश करने की जरूरत है। हमें भी हमदर्द औद्योगिक देशों के साथ गठबंधन बनाने की आवश्यकता है। भारत में, हमें विचारक-मंडल और विश्वविद्यालयों की क्षमता निर्माण की जरुरत है ताकि हमारे नीति निर्माताओं को बताया जा सके कि किस प्रकार से अंतरराष्ट्रीय नीतिगत कार्यसूची के लिए दृष्टिकोण अपनाया जाए और उसे कैसे आकार दिया जाए। हमें द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय संधियों पर समझौता करते समय 'अच्छी तरह तैयार रहने की आवश्यकता है, ताकि इस तथ्य के प्रति जागने में कहीं बहुत देर न हो जाए कि हमने ऐसा कुछ रखा ही नहीं कि सभा हमें कुछ अधिक दे सके। सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने, लगे रहने तथा गठबंधन पैदा करके हम विश्व की कार्यसूची को प्रभावित कर सकते हैं और हमें एक बाधक किंतु अंततः पूर्व में शक्तिहीन राष्ट्र के रूप में माने जाने वाले राष्ट्र के रूप में नहीं देखा जाएगा।

समापन

अब मैं अपनी बात समाप्त करना चाहता हूँ। श्री रामनाथ गोयनका ने उन तथ्यों को उजागर करके फोकस किया है जिनपर सार्वजनिक चर्चा आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी। प्रायः हमारे लोग अधिकांश बहस ऐसी करते हैं जो शोर अधिक होती है बजाय उससे प्रेरणा लेने के, इसलिए हमें गोयनका जी द्वारा स्थापित उदाहरण से सबक हासिल करना चाहिए। चूंकि हम वैश्विक मंदी के दौर से गुज़र रहे हैं और हम निरंतर नीतियों का निर्धारण करते रहे हैं, इसलिए हमें बहस करने की आवश्यकता है कि हमारी नीति का मार्ग क्या होना चाहिए, किन तथ्यों पर आधारित होना चाहिए, अनुभवजन्य विश्लेषण और पुख्ता दलीलों पर। मैंने एक चिंतन दिया है और उम्मीद है कि वैकल्पिक विचार पैदा होंगे। मुझे सुनने के लिए आपको धन्यवाद।